IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भक्तिकाल:मूल्य एवं प्रासंगिकता

डॉ. धनंजय कुमार दुबे
मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

भक्तिकाल की प्रासंगिकता पर चर्चा करते हुए सर्वप्रथम हमें इस बात पर गौर करने की जरूरत है कि भक्तिकाल पर विचार करने का हमारा दृष्टिकोण आधुनिक होना चाहिए. इस आधुनिकता का एक आशय शास्त्रसम्मत व्याख्याओं, विभिन्न उपासना पद्धतियों और भक्ति की दार्शनिक टिकाओं से पृथक इतिहास, समाज, साहित्य और आलोचना की अंतर-अनुशासनिक (Interdisciplinary) विधा के रूप में इसे पढ़ने की आवश्यकता से भी है. यह तथ्य है कि "आधुनिक युग में जीव विज्ञान, इतिहास और मनोविज्ञान के क्षेत्र में डार्विन, मार्क्स, फ्रायड़ आदि विचारकों ने चिंतन का एक नया पैराडाइम हमारे सामने उपस्थित किया."**1** इनसे चिंतन और विचार की सरणियों में आमूल बदलाव उपस्थित होते हैं. ये बदलाव भक्तिकाल में ही नहीं किसी भी दौर के साहित्य को पढ़ने समझने में सहायक सिद्ध होते हैं. इस पूरे परिप्रेक्ष्य में भक्तिकाल को देखने से उसकी प्रासंगिकता के ठोस बिंदु हमारे समक्ष आ सकते हैं.

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन अपनी प्रगतिशील सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक भूमिका के बावजूद मूलतः एक धार्मिक आंदोलन के रूप में हमारे सामने आता है. भारत ही नहीं यूरोप और दुनिया के अन्य देशों में भी इस दौर में भी इस दौर में उभरने वाला कोई भी जनतांत्रिक अभियान या तो धर्म या भक्ति के आवरण में प्रत्यक्ष होता है.**2** यूरोप के सुधार आंदोलन का उल्लेख करते हुए 'लुडविग फायरबाख' नामक अपनी कृति में एंगेल्स लिखते हैं- "मध्ययुग ने धर्म-दर्शन के साथ विचारधारा के अन्य सभी रूपों दर्शन, राजनीति, विधिशास्त्र को जोड़ दिया और इन्हें धर्म दर्शन की उपशाखाएँ बना दिया. इस तरह उसने हर सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन को धार्मिक जामा पहनने के लिए विवश किया."**3** के. दामोदरम ने भी लिखा है - "धार्मिक आंदोलनों ने विशेषकर उस समय जब वे प्रारंभिक अवस्था में थे और उन्होंने किसी पंथ या संप्रदाय का रूप धारण नहीं किया था, एक गतिपूर्ण और प्रगतिशील भूमिका ही अदा की. हमारे इतिहास के कितने ही मोड़ों पर जनता में धार्मिक शिक्षाओं के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण ने विलक्षण सृजनात्मक शक्ति को जन्म दिया, ऐसी शक्ति को जन्म दिया, जो अभूतपूर्व सामाजिक परिवर्तन लाने में सक्षम हुए."**4** इस तरह भक्ति आंदोलन धार्मिक होते हुए भी लोकोन्मुख आंदोलन था,**5** जिसका गहरा सामाजिक, सांस्कृतिक असर भारतीय जनमानस पर पड़ा.

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का उद्भव हिंदी साहित्य के लिए एक विशेष घटना रही. भक्ति काल के उदय को लेकर भी गंभीर बहस होती रही हैं. जिनमें भक्तिकाल के उदय को लेकर मत मतांतर भले ही रहे हो परंतु इतना स्पष्ट है कि सबने इसे भारतीय मनीषा और लोकचिंता से जोड़ा. इस संदर्भ में इरफान हबीब और रामविलास शर्मा के विश्लेषणों का महत्वपूर्ण योगदान इस अर्थ में है कि उन्होंने भक्ति के उदय को स्पष्ट तौर पर उस दौर में हो रहे व्यापारिक, तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों से जोड़ा. जिससे यह स्पष्ट हुआ कि किस तरह सामंती समाज में व्यापारिक पूंजी की प्रवेश से समाज के कई मेहनतकश वर्गों में आत्म-सम्मान का भाव ज्यादा पुख्ता हुआ और वे संगठित होने लगे. भक्ति आंदोलन इनके आंदोलन का सांस्कृतिक प्रतिबिंब था.**6**

भक्ति आंदोलन के उद्भव और इसके स्वरूप पर मतभेदों के बावजूद इतना तो स्पष्ट है कि भक्त कवियों की भक्ति वैयक्तिक होते हुए भी, उनके बीच साधनात्मक और दार्शनिक भेदों**7** के बावजूद अपने प्रभाव, शैली, स्वरूप और उद्देश्य में कहीं अधिक सामाजिक थी. भक्त कवियों की साधना, दार्शनिक पक्ष, गतिविधियां, उनकी रचनाओं की विषय वस्तु, शैली तथा इनके प्रभाव के आधार पर भले ही इन कवियों को अलग-अलग मतवादों में देखने-पढ़ने-परखने की परंपरा रही हो परंतु कुछ

बातें सभी में लगभग समान हैं. सबसे पहले ये सभी प्रथमत: भक्त हैं. कविता तो इनकी भक्ति, इनके विचारों की वाहक है. पुन: यह भी कि सबकी भक्ति अपने समय, समाज और लोक के प्रति जिम्मेदारी की भावना से परिचालित है. "मानुस प्रेम भयो बैकुंठी" की बात हो या फिर "जाति-पाति पूछै नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई", "संतन को कहा सीकरी सो काम" हो या "मुखिया मुख सो चाहिए खान पान को एक" या "फिर मूरख जन सिंहासन राजा, पंडित फिरता द्वारां"- इन सब में कुछ भाव समान हैं. मानव मात्र से प्रेम का उद्घोष, आमजन के प्रति समानता और भाईचारे की भावना का आवाहन तथा सत्ता और सामंती सोच के प्रति हिकारत का भाव, सत्ता के गैरजिम्मेदार रवैये के विरुद्ध संघर्ष और विरोध का भाव इनमें प्रमुख हैं. विमर्शों के युग और आधुनिक शब्दावली में यह कहना कि प्रत्येक विचार और सोच के पीछे तो सुचिंतित कार्ययोजना या राजनीति होती है, इससे सहमत होने पर भी पंक्तियों के अर्थ पूर्णतया बदल नहीं, उनके बीच के अर्थ भेदों को तत्कालीन संदर्भों में परिभाषित किया भी किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए.

भक्तिकाल के कवियों का लेखन उनके स्वानुभूत सत्य एवं पर्यवेक्षण का हिस्सा है. उनकी कविताएं उनके व्यक्तिगत जीवन अनुभवों, संघर्षों और कामनाओं की अभिव्यक्ति हैं. उसमें आप्त वाक्यों, महान ग्रंथों और तथाकथित गौरवपूर्ण परंपराओं की बजाय, अनुभव सत्य को प्राथमिकता देने का भाव प्रधान है. यह अनुभव सत्य सामान्य जनों और समाज के हाशिए पर के लोगों के हितों के प्रति जागरूक, सचेत और साहसपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया जाने वाला है. शास्त्र और परंपराएं अगर इसे समर्थित करें तो बेहतर है, नहीं तो वे उनका पूरी ठसक के साथ प्रतिकार करने को भी तैयार हैं. यह संघर्ष और साहस भक्तिकाल की बहुत बड़ी उपलब्धि है, जो कि सभी भक्त कवियों के यहां किसी न किसी रूप में मौजूद है. कबीरदास कहते हैं-

मैं कहता हौं आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ अरुझाई रे

मध्यकालीन समाज में सत्ता का रूप अधिक निरंकुश और दमनकारी था. सत्ता का यह रूप सिर्फ राजनीतिक नहीं था अपितु सामंती, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक सताएं भी थी, जो केंद्रीय राजनीतिक सत्ता से अधिक दमनकारी खूंखार और अमानवीय और प्रत्यक्ष थीं, जिनका दिन प्रतिदिन सामना करना होता था. ऐसे माहौल में बराबरी, भाईचारा और प्रेम का उद्घोष करना अपूर्व हिम्मत और साहस का काम था. भक्तिकालीन कवियों ने सत्ता के विविध रूपों की पहचान करते हुए ना सिर्फ उन पर उंगली उठाई बल्कि तल्ख तेवर के साथ उसे सीधे-सीधे चुनौती भी दी. यह बात आज के लोकतांत्रिक समय में खासा महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है. यहां यह बात भी समझनी आवश्यक है कि यह तेवर और साहस इन रचनाकारों में कैसे संभव था? इनका स्रोत क्या था, और यह भी इतना सब होने के बावजूद मौजूदा समय की तरह सताएं इनके लिए उस समय उस प्रकार की चुनौतियां क्यों नहीं पेश कर पाती थीं, जिनसे इन बगावती आवाजों को रोका जा सके? इसके कई कारण संभव प्रतीत होते हैं, जिसमें भक्त कवियों का सादा और बहुत थोड़े में जीवन-यापन की शैली, उनका लोक के प्रति जुड़ाव, उनकी लोक चिंता, प्रतिबद्धता और अदम्य साहस शामिल है. जिसके कारण इन भक्त कवियों को लोग ने हाथों हाथ लिया और भक्ति एक आंदोलन का रूप ले सकी. इससे यह बात साफ तौर पर चिन्हित होती है कि तत्कालीन समाज में इनकी पैठ, इनका मान-सम्मान बहुत था, खासकर मेहनतकश वर्ग में. ये लोग सही मायनों में उस दौर के पब्लिक लीडर थे और आम समाज संभवत: आज के दौर की तरह असहिष्णु भी नहीं था. अर्थात भक्ति आंदोलन को जनता का भरपूर समर्थन हासिल था. यह अकारण नहीं कि भारत के कोने-कोने में संतो-भक्तों की वाणियों की लोकप्रियता बड़े पैमाने पर रही है. अनपढ़, अधपढ़ लोगों में भी वाचिक श्रवण परंपरा के आधार पर संतों की वाणियों और भक्तों के संदेशों की देशभर में व्यापक लोकप्रियता रही है. इसने देश भर के लोगों को सबसे ज्यादा प्रभावित किया "भक्ति आंदोलन का जनसाधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ, उतना किसी अन्य आंदोलन का नहीं. पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए. अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए. कबीर, रैदास, नाभा, सिंपी, सेना आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज बुलंद की. समाज के न्यस्त स्वार्थवादी वर्ग के विरुद्ध नया विचारवाद अवश्यंभावी हुआ."**8** मध्यकालीन किसी भी धारा का कवि चाहे वह संत काव्य-धारा हो या सूफी या राम भक्ति शाखा हो अथवा कृष्ण भक्ति शाखा का, सभी के यहां सत्ता के दमन, उसके लोक-विरोधी और प्रजा-विरोधी रुख की कटु आलोचना की गई. इसके समानांतर एक ऐसे समाज की परिकल्पना भी की गयी जिसमें इन समस्याओं से मुक्त समानता पर आधारित एक समाज है. तुलसीदास लिखते हैं :

राज करत बिनु आज ही, करै कुचालि कुसाज

तुलसी तें दसकंध ज्यों, जइहैं सहित समाज

अपने रामराज्य में इसका समाधान भी बताते हैं :

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य नहिं काहुहि व्यापा॥

यही नहीं संत रैदास भी अपनी बेगमपुर वाली कविता में एक आइडियल किंगडम की परिकल्पना करते हैं. कविता का भाव यह है कि मैं एक ऐसे शहर का वासी हूं जहां कोई परेशान नहीं है, जहां किसी को आजीविका के लिए और उसकी सुरक्षा के लिए कोई चिंता नहीं करनी पड़ती, जहां कोई गलत काम नहीं कर सकता, जहां सब लोग सुरक्षित हैं और जिसका नाम बेगमपुर है, जहां कोई गम नहीं है.

भक्त कवि यही नहीं रुके अपितु उन्होने मध्यकालीन समाज और धर्म में व्याप्त बाह्याचार और कर्मकांड पर प्रहार कर एक ओर आमजन को स्वर्ग-नर्क के लोभ और भय से दूर करने का प्रयास किया वही दुनियावी सत्ता के ईश्वरीय वैधता वाले सिद्धांत जिसमें शासक ईश्वर का प्रतिनिधि है, का जोरदार खंडन किया. ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्यों की बराबरी का संदेश देते हुए गैर बराबरी के विरुद्ध एक प्रबुद्ध तर्क भी प्रस्तुत किया. सामाजिक हैसियत के निर्धारण में जन्मना के सिद्धांत को नकारते हुए आचरण और कर्म को ही प्रमुख मानते हुए, विचार और तर्क के अब तक की सभी सरणियों को काफी हद तक बदल दिया. इससे जनसामान्य में कर्म और मुक्ति की नई अवधारणा उत्पन्न हुई. जिससे भाग्यवाद की जगह कर्मवाद को काफी हद तक बल मिला. यही वजह है कि सत्संगति, सच्चरित्रता, ईमानदारी, त्याग और प्रदर्शनरहित, आडंबररहित जीवन और आचरण तथा इससे संबद्ध भक्ति को प्रमुख स्थान मिला.

भक्तिकालीन कविता का लोक जुड़ाव महत्वपूर्ण है. यह जुड़ाव इन्हें एक ओर आभिजात्य से अलग करता है तो दूसरी ओर जनजीवन से गहरे जोड़ता है. भौतिकता और आत्म प्रदर्शन से दुराव, सोच-विचार, कर्म और आचरण की एकता, दृढ़ता और अडिगता इन्हें पतनशील सामंती मूल्यों और संस्कृति के तिरस्कार और उसके मुकाबले का आत्मबल प्रदान करती है. पारदर्शिता, शुचिता और कथनी-करनी की एकता इन कवियों की रचना को न सिर्फ विशिष्ट बनाती है बल्कि ये इन मूल्यों को जीवन में प्रत्यक्ष करने का उपक्रम भी करते हैं. इससे उन्हें वह ताकत प्राप्त होती है जिससे अपने समय की कठिन चुनौतियों और आततायी ताकतों का वे डटकर मुक़ाबला कर पाते हैं. मध्यकालीन समाज में जो कुछ भी जनसामान्य के लिहाज से अहितकर, भेदभावकारी व अन्यायपूर्ण है, उसका ये प्रतिरोध करते हैं. यह सब कुछ भक्ति के माध्यम से किया जाता है. इस तरह संपूर्ण भक्ति आंदोलन खुद को टटोलने, अपनी दुर्बलताओं से मुक्ति पाने, सबको समभाव से देखने के साथ ही सांस्कृतिक विरासत को सहेजने और मानव मात्र से प्रेम का उद्घोष करने का स्तुत्य प्रयास है. भक्त कवियों की प्रतिभा, वैयक्तिक योग्यता कम अधिकांश में लोक बुद्धि से अर्जित-निर्मित सृजन प्रतिभा अधिक है.9 भक्त कवियों का यह लोक जुड़ाव उनकी सोच, कर्म में तो है ही उनकी कविताओं की बुनावट में भी है. कविता की विषयवस्तु, भाषा-संरचना, गीतात्मकता, मुहावरे-लोकोक्तियों से लेकर प्रतीकों-उपमानों के चयन में भी दिखाई पड़ती है. इस लोक निर्भरता से एक प्रकार की स्थानीयता भी कई बार भक्तिकालीन कविताओं की विशेषता बन जाती है जो एक प्रकार की चुनौती पाठकों के समक्ष रखती है.

भक्ति आंदोलन के साथ रचनाकारों के सौंदर्य चिंतन में बड़ा बदलाव आता है. पूरे भक्तिकाल की कविता में भक्ति के साथ जो दूसरी केंद्रीय जुड़ाव है वह सामाजिक समस्याओं की गहरी परख. सामाजिक चिंता और चिंतन के दम पर इनकी कविता आमजन की पक्षधरता में अनिवार्यत: आ खड़ी होती है. अर्थात सामाजिक समस्याओं की पड़ताल और उनसे जुड़ाव कविता का केंद्रीय सरोकार बन जाता है. भक्तिकालीन कविता के सरोकारों पर प्रो. नित्यानन्द तिवारी की टिप्पणी काबिलेगौर है, वे लिखते हैं- "श्रीमद्भागवत के बारे में कहा जाता है कि इसे पूरे हिंदुस्तान की मध्यकालीन सर्जना का स्रोत माना जा सकता है. श्रीमद्भागवत की मुख्य समस्या आध्यात्मिक नहीं है, मुख्य समस्या है आध्यात्मिक साधना का अधिकार पाने की. यह अधिकार पाना या अधिकार पाने की आवाज उठाना, यह सामाजिक है. इसी से भक्ति जुड़ी हुई है. इस तरह भक्त होना प्रचलित सामाजिक व्यवस्था के विरोध में होना है. तुलसीदास को ही ले लीजिए, उनमें बहुत से अंतर्विरोध हैं लेकिन भौतिक तौर पर गरीब होना और मानसिक तौर पर व्यवस्था के विरोध में होना वहां भी अनिवार्य है. यह एक तरह से भक्त होने की इलिजीबिलिटी बताई जा रही है. अगर यह इलिजीबिलिटी आप में नहीं है तो आप भक्त और कवि कभी नहीं हो सकते हैं. रीतिकाल में ऐसा नहीं है, वहाँ कवि होने की इलिजीबिलिटी सिर्फ भावना है. सौंदर्य के कुछ उपकरण हैं, उनको साध लीजिए और आप कवि हो

जाइए. लेकिन सौंदर्य भक्त का अनिवार्य लक्षण नहीं है कवि का भी अनिवार्य लक्षण नहीं है. भक्त जो होगा उसकी सौंदर्य चिंता अलग है."10

आधुनिक चिंतन और सोच विचार की जो सरणी इतिहास, समाज-विज्ञान इत्यादि अनुशासनों से बनती है उसकी एक बड़ी उपलब्धि है 'सेक्यूलर' सोच की अवधारणा. इसे धर्मनिरपेक्ष कहें या कि पंथनिरपेक्ष इसके बिना चाहे मध्ययुगीन साहित्य हो या आधुनिक साहित्य उसे ठीक तरह से पढ़ना संभव नहीं. यह मध्यकालीन साहित्य की उपलब्धि भी है और उसे ठीक ढंग से पढ़ने का जरिया भी. भक्तिकाल में आराधना, साधना और चिंतन के विभिन्न मतवादों के बीच यह 'सेक्यूलर' सोच संतुलन स्थापन का कार्य भी करता है. इस संदर्भ में प्रख्यात राजनीतिक चिंतक राममनोहर लोहिया का वक्तव्य महत्वपूर्ण है. लोहिया ने कहा कि भक्ति काव्य के केंद्र में हैं - राम, कृष्ण और शिव. लोहिया ने कहा कि राम जैसा मर्यादा पुरुषोत्तम मैंने आज तक नहीं देखा. एक ऐसे दौर में जबकि सामंती राजा सैकड़ों की संख्या में पत्नियां रखते थे, यह राम ही हैं जो एकपत्नी व्रती हैं, ये राम ही हैं जो कि जब रावण युद्ध भूमि में गिरा हुआ है तब अपने भाई से कहते हैं कि उसके पैरों के पास जाकर राजनीतिक शिक्षा लो. लोहिया का कहना है कि मर्यादा और शिष्टाचार की दुनिया में यह अनुपम कहानी है, इसके जैसी और कहीं नहीं. सूरदास की प्रशंसा करते हुए लोहिया कहते हैं स्त्रियां दुनिया में कहीं पुरुषों के बराबर हुई है तो वृंदावन में और कान्हा के संग. लोहिया के अनुसार भारतीय मिथक में कृष्ण वो चरित्र हैं जहां स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है. शिव वो चरित्र हैं जो इस दुनिया के लिए विष धारण कर लेता है. प्रार्थना के स्वर में वे भारतमाता से कहते हैं कि भारतमाता मुझे राम की मर्यादा से रचो, शिव की विशालता दो और कृष्ण का वह स्वच्छंद हृदय दो, जहां स्त्री और पुरुष बराबर हों.11 इस सेकुलर सोच का जीवंत रूप है भक्ति काव्य. कबीर जब हिंदुओं और तुर्कों दोनों पर व्यंग करते हैं तो उसका आधार है बाहरी दिखावे का विरोध, अन्याय का विरोध और इस विरोध की तल्खी से दोनों धार्मिक ठेकेदारों से बराबरी पर बात करते हैं, उन्हें चुनौती देते हैं, उनकी मान्यताओं का खंडन करते हैं. जीवन और भक्ति में सहजता की वकालत करने के क्रम में कबीर विभिन्न साधना पथों और उनके अनुयायियों को भी नहीं छोड़ते. तुलसीदास सबके बीच में सामंजस्य स्थापित करने का भरसक प्रयास करते हैं और सगुण-निर्गुण, शैव-शाक्त-वैष्णव सबके बीच एक संतुलन की राह बनाने का भरसक प्रयास करते हैं. अपने से इतर विचारों और पूजा-पद्धतियों का इस तरह का सम्मान 'सेक्यूलर' की अवधारणा की प्रस्तावना नहीं तो और क्या है. यह भक्तिकाल की वह मूल्यवान सांस्कृतिक विरासत है, जो भारतीय जनमानस की चट्टानी ताकत और उसका जीवन रस है, जिसके बिना आज भी हम एक समृद्ध, शक्तिशाली और गौरवपूर्ण राष्ट्र की कल्पना भी नहीं कर सकते.

भक्तिकालीन सृजनात्मकता का एक सबसे ताकतवर पहलू है इसकी यथार्थता, इसकी कथावस्तु की मार्मिकता. कबीर हों, तुलसीदास हों, मलिक मोहम्मद जायसी हों, अथवा मीरा या अन्य भक्त कवि, इन सभी के काव्य में निहित आध्यात्मिकता को कुछ क्षणों के लिए विस्तृत भी कर दिया जाए तो इनकी संवेदना का धरातल इतना ठोस, इतना वाजिब है, इनका मानवीय पर्यवेक्षण इतना सटीक है, मार्मिक प्रसंगों की पहचान इनकी इतनी जबरदस्त है कि इन्हें कालजयी साहित्य के रूप में याद किया जा सकता है. उदाहरण के लिए रामचरितमानस के वन गमन प्रसंग की चर्चा की जा सकती है राजगद्दी के लिए तैयारी चल रही है कि इसी बीच के कैकयी राजा दशरथ से उनके पूर्व के प्रण के अनुरूप वरदान मांग लेती है. पूरा परिदृश्य एकाएक बदल जाता है. कैकयी का एकसाथ दो वरदान मांगना जिसमें राम को चौदह वर्ष के लिए संन्यासी के रूप में वनवास और भरत का राज्यारोहण शामिल है. इस बदले हालात में कैकयी की कूटनीति, कौशल्या के प्रति उसका सौतियाडाह, बुजुर्ग हो चले राजा दशरथ की किंकर्तव्यविमूढ़ता, उनका दयनीय हो जाना, यह सब क्या सिर्फ दैवीय अर्थ में महत्वपूर्ण है? जी नहीं, ये सारे कारण ठोस हैं और व्यावहारिक होने के साथ ही विशुद्ध रूप से लोक परिचित भी हैं. मीरा और जायसी के यहां भी ऐसे ढेरों प्रसंग मौजूद हैं. जायसी का यह कथन क्या वास्तविक जगत की सच्चाई को बयां नहीं करता?

छार उठाई लींही एक मुट्ठी, दीन्ही उड़ाय पिरिथमी झूठी

पद्मावत का पूरा का पूरा नागमती-वियोग खंड लोक जीवन के अनुभव का पिटारा ही तो है ही. जिसका आध्यात्म के आवरण के बिना भी अपना विशिष्ट महत्व है. कबीर के काव्य में ऐसे कई संदर्भ मौजूद हैं -

अब न बसूँ इही गांव गुसाईं

तेरे नेवगी खरे सयानो हो राम

नगर एक तहँ जीव धरम हत, बसे जु पंच किसानां

नैनूं नकटूँ श्रवनूं रसनूं, इंद्री कहा न माने हो राम

गांऊं कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै

जोरि जेवरी खेत पसारै, सब मिलि मोको मारै हो राम

खोटो महतो वकट बलाही, सर कसदम का पारै

बुरै दीवान दादि नहीं लागै, इक बांधे, इक मारे हो राम

धरमराई जब लेखा मांग्या, बाकि निकसी भारी

पांच किसाना भाजि गये हैं, जीव धर बांधयौ पारी हो राम

कहे कबीर सुनहु रे संतो, हरि भजी बांधो भेरा

अबकी बेर बकसि बंदे कौं, बहुरि न भौजली फेरा

यहां कबीर ने रुपक बनाया है, जिसमें सांसारिकता के कष्टों का वर्णन है और संसार से मुक्ति की आकांक्षा भी. लेकिन इस रूपक में किसान हैं, जमींदार हैं, उसके करिंदे हैं, धर्मराज हैं, यह सभी पीड़क हैं, अत्याचारी हैं, खूंखार हैं, इन सब के डर से गांव से भागने की आकांक्षा भी है. यह मुक्ति क्या सिर्फ संसार से मुक्ति की है? कबीर जिस समाज से रूपक को ले रहे थे क्या वह समाज सामंती जकड़न में कैद समाज की एक मार्मिक सच्चाई नहीं है? क्या यह सामंती समाज के उत्पादन संबंधों के विरुद्ध विद्रोह का खुला आह्वान नहीं है?**12**

भक्तिकालीन कवि सामंती सोच और आचरण पर आधारित व्यवस्था पर चोट करता है और यह संदेश भी देता है कि जीवन में सहजता का मोल क्या है. आज के उपभोक्तावादी समाज और बाजारवादी व्यवस्था की बाहरी चकाचौंध में सादा जीवन और उच्च विचार जैसी अवधारणा को प्रस्तावित करता भक्ति साहित्य आज के दौर में एक अनुपम उदाहरण, एक प्रेरणा का कारक बन जाता है. सादा जीवन का यह मंत्र स्वयं की सुख सुविधा के गुलाम बनते जा रहे मानव समाज को ही आईना नहीं दिखाता अपितु तत्कालीन संदर्भों में विलासिता भरा जीवन जी रहे सामंत वर्ग को एक चेतावनी एक संदेश भी देता है. कबीर कहते हैं -

कहा चुनावे मेड़िया लंबी भीत उसारी,

घर तो साढ़े तीन हाथ घणा तो पौने चारि

तथा

झूठे सुख को सुख कहे मानत है मन मोद

जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद

भक्तिकालीन कवि सामंती सोच और आचरण पर पर चोट करते हुए है, मानव प्रेम की बात करते हैं, लेकिन इसमें सबसे बड़ी बाधा जाति प्रथा और नारी पराधीनता की रूढ़ी का था.**13** जाति प्रथा के विरुद्ध लगभग सभी भक्त कवियों ने आवाज बुलंद की जो आगे चलकर दलित विमर्श का कारक भी बना. परंतु स्त्री पराधीनता और स्त्री के जीवन संघर्षों का वह पक्ष इन कवियों में कभी नहीं आ पाया जो स्त्री भक्त कवयित्रियों में प्रत्यक्ष हुआ. यह पक्ष पूरा हुआ स्त्री रचनाकारों के भक्ति आंदोलन में प्रवेश और उनके लेखन से. भक्ति आंदोलन में बड़ी संख्या में स्त्रियों ने खुल कर अपने विचार रखे. कश्मीर में ललद्य से लेकर, तमिलनाडु में आंडाल, कर्नाटक में अक्क महादेवी, महाराष्ट्र में मुक्ताबाई और हिन्दी में मीराबाई इसकी मिसाल हैं. इसके पूर्व स्त्री अनुभव तो साहित्य और विचार के दायरे में अवश्य आए थे लेकिन जब बड़ी संख्या में स्त्री लेखिकाओं ने लिखना शुरू किया तो उससे चिंतन और विचार के नए पहलू सामने आए. मीरा का काव्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है.

ध्यातव्य है कि राजपूताने में इतिहास लेखन की विधिवत परंपरा के बावजूद मीरा का आरंभिक तौर पर वहाँ उल्लेख का नहीं मिलता है. मीरा का उल्लेख करने से परहेज उनके कुल-वंश वालों ने ही नहीं बल्कि उच्च जतियों वालों कवियों ने भी की. मीरा का पहले-पहल उल्लेख नाभादास के साहित्य में मिलता है. नाभादास भक्त थे और मीरा को भी उन्होने भक्त बताया है. नाभादास मीरा के बारे में कहते हैं कि गोपियों की तरह मीरा ने कलियुग में भगवान कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रदर्शित की. इसके बाद 18वीं सदी में कृष्ण भक्त नागरीदास ने अपनी पुस्तक 'पद प्रसंग माला' में मीरा की प्रशंसा की. इसके बाद 1914 में रविंद्रनाथ टैगोर की लिखी कहानी 'स्त्रेर पत्र' में मीरा का उल्लेख परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह करने वाली स्त्री के रूप में आता है. गांधीजी 1915 के बाद लिखे अपने पत्रों में मीरा का उल्लेख सामंती समाज के विरुद्ध विद्रोह करने वाली स्त्री

के रूप में करते हैं और उन्हें पहला सत्याग्रही बताते हैं. मीरा जनजातियों और अश्पृश्य समझी जाने वाली जातियों में भी खूब गायी जाती हैं.**14** इस सच्चाई के सामाजिक, आर्थिक गणित को समझना कठिन नहीं है. जिसके विरुद्ध पूरा भक्ति काव्य पूरी ठसक के साथ खड़ा होता है.

मीरा कृष्ण की अनन्य भक्त हैं. वैसे तो भक्ति काल में कृष्ण भक्ति और भक्तों की एक पूरी परंपरा रही है, परंतु मीरा की भक्ति इन सबसे अलग है, विशिष्ट है. इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मीरा भक्त भी हैं और मध्यकालीन नारी भी और वह भी राजघराने से सम्बद्ध. मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए जाति-पाति, धन-धर्म, बड़ाई छोड़ता था तो स्त्री को लोक-लाज, कुल-श्रृंखला तोडनी पड़ती थी.**15** मीरा की भक्ति में प्रेम और साधना है तो मध्यकालीन स्त्री का संघर्ष और उसकी आवाज भी. मीरा की भक्ति स्वायत्तता के उद्बोधन की थी, जहां भक्त और भगवान के बीच समाज, सत्ता, रीति-नीति और परंपराओं के बंधन के लिए कोई स्थान न था. लेकिन उनके जीवन में ये सभी बंधन प्रचुर मात्रा में थे. भक्ति के माध्यम से मीरा अपने समय, समाज और राजसत्ता की रीति नीति और परंपराओं के विरुद्ध उठ खड़ी होती हैं और कभी अप्रत्यक्ष तो कभी सीधे-सीधे बगावती अंदाज में उन्हें चुनौती दे डालती हैं. चुनौती देने का यह साहस, यह शैली अपूर्व है, जो मीरा को अन्य भक्त कवियों से विशिष्ट बनाता है. कृष्ण के प्रति प्रेम को भी छुपाती नहीं बल्कि ताल ठोक कर उसकी उद्घोषणा करती हैं :

म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरां णा कूयाँ

दूसरां णा कूयाँ साधां सकल लोक जूयाँ

भाया छाड़याँ, बंधा छाड़याँ छाड़याँ सगां सूयाँ

साधां ढिंग बैठ बैठ, लोक लाज खूयाँ

यह प्रेममय भक्ति कितनी कठिन है यह मध्यकाल में स्त्रियों की दशा के बारे में जानने वाले सभी को पता है. अन्य भक्त कवियों की तरह यह सिर्फ दैव वियोग का दुख मात्र नहीं है, आंसुओं से सना यह जीवन-संघर्ष मीरा के जीवन का यथार्थ है, जिसके विरुद्ध वे सदैव संघर्षरत हैं. मीरा के इस संघर्ष का संबल है कृष्ण के प्रति उनका प्रेम, जो कि सांसारिक और भौतिक प्रेम की मर्यादाओं और मानदंडों से परे है. इसलिए मीरा की कविता ज्यादा प्रामाणिक, ज्यादा जीवंत है. मीरा का काव्य उदाहरण है, जहां रचनाकार का जीवन और काव्य एक दूसरे में घुल मिल गए हैं, परस्पर संपर्क से वे एक दूसरे को समृद्ध करते हैं.**16** मीरा का विद्रोह विकल्पहीन व्यवस्था में स्वतंत्रता के लिए विकल्प की खोज है. उन्हें विकल्प की खोज के लिए संकल्प की शक्ति भक्ति से मिलती है. यह भक्ति आंदोलन का क्रांतिकारी महत्व है. मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री की मुक्ति के स्वर की अभिव्यक्ति है. उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है उतनी सामाजिक भी है.

मीरा सिर्फ राजसत्ता की अवहेलना नहीं करतीं अपितु राजसत्ता को उसकी सीमा बताने की हद तक जाती हैं. इसके लिए वे ईश्वर की शक्ति और सत्ता को आमने-सामने खड़ा कर देती हैं और इससे अपने मैत्री की घोषणा करती हैं. इस प्रक्रिया में आगे बढ़ते हुए अपने दौर के शासक का नाम लेकर आलोचना करने का साहस सिर्फ मीरा के यहां मिलता है :

मूरख जण सिंहासन राजा पंडित फिरता द्वारां

मीरा रे प्रभु गिरिधर नागर राणा भगत संहारा

भक्ति काव्य की एक बड़ी विशेषता है कि सभी भक्त कवि बड़ी ही ने दृढ़ता से अपनी बात कहते हैं, तार्किकता के साथ कहते हैं. वह अपनी सामाजिक पहचान को जाहिर करते हैं और अपने आचरण से उस थोपे हुए पहचान से मुक्ति का संघर्ष भी करते हैं. भक्तिकालीन कवियों की भक्ति धर्म की अफीम नहीं है, वह जन जागरण, जन मंगल और इसके लिए किए जाने वाले संघर्ष का साधन भी है. जनसामान्य की वेदना और उनके जर्जर हालत का जो सजीव चित्रण भक्तिकालीन कविता में है वह काव्य जगत की अनमोल धरोहर है.

नहीं दरिद्र सम दुख जग माहीं परपीड़ा सम नहिं अधमाही

या

आगि बड़वागी ते बड़ी है आगि पेट की

और इससे आगे चलकर

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, ते नृप अवसि नरक अधिकारी

भक्तिपरक काव्य रचना के माध्यम से 'मानस प्रेम' को बैकुंठ के सदृश्य मानने वाले भक्त कवियों के लिए ईश्वर का सबसे आकर्षक रूप है दीनबंधु का और उनका संदेश स्पष्ट है- एक समतामूलक समाज के निर्माण का. भक्ति आंदोलन न सिर्फ अखिल भारतीय आंदोलन है अपितु देश और काल की दृष्टि से ऐसा व्यापक सांस्कृतिक आंदोलन संसार में दूसरा नहीं है.17 कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि संत कवि पलटूदास का संदेश सही मायनों में भक्ति काव्य के मूल्य, उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करता है और वह यह है कि :

सुनहु मानुष भाई,

सबार ऊपर मानुष सत तेषार ऊपर नाहीं.

संदर्भ

1. मध्यकालीन साहित्य: पुनरावलोकन, नित्यानंद तिवारी, पृष्ठ 10, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2015
2. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ 16, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण 2012
3. उद्धृत, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ 16, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2012
4. भारतीय चिंतन परंपरा, श्री के. दामोदरम, पृष्ठ 76, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2010
5. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 65, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2010
6. भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, पृष्ठ 437, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001
7. (बजरंग बिहारी तिवारी) साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, संपादक- देवेन्द्र चौबे, पृष्ठ 277, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2013
8. नई कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ 88, विश्वभारती प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1964
9. मध्यकालीन साहित्य: पुनरावलोकन, नित्यानंद तिवारी, पृष्ठ 84, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2015
10. (नित्यानंद तिवारी) मध्यकाल: एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक- धनंजय कुमार दुबे, पृष्ठ 21, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
11. (गोपेश्वर सिंह) मध्यकाल: एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक- धनंजय कुमार दुबे, पृष्ठ 40, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
12. नया पथ (पत्रिका), जनवरी-मार्च 2010, पृष्ठ 182
13. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 55, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2010
14. (नामवर सिंह) संस्कृति का ताना-बाना, अनुवाद- आभा गुप्ता ठाकुर, पृष्ठ 74-76, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2016
15. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 83, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2010
16. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरुप चतुर्वेदी, पृष्ठ 59, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1993
17. (रामविलास शर्मा) मध्यकालीन साहित्य विमर्श, संपादक- सुधा सिंह, पृष्ठ 332, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण, 2004